नईदुनिया

संपादकीय

डिमांड और सिस्टम का आईना

महाराष्ट्र के रायगढ़ में सामने आया रिश्वत कांड केवल दो अधिकारियों की गिरफ्तारी का मामला नहीं है, बल्कि पूरी व्यवस्था की पारदर्शिता और जवाबदेही पर गंभीर सवाल खड़े करता है। केंद्रीय जांच ब्यूरो ने सीजीएसटी के एडिशनल कमिश्नर और सुपरिटेंडेंट को 40 लाख रुपये की रिश्वत लेते हुए पकड़ा है। आरोप है कि जीएसटी और रॉयल्टी विवाद के निपटारे के लिए डेढ़ करोड़ रुपये की मांग की गई थी, जबकि बाद में सौदा 40 लाख रुपये में तय हुआ। रकम लेने के लिए एक निजी व्यक्ति को माध्यम बनाया गया, लेकिन सीबीआई की कार्रवाई में पूरा मामला सामने आ गया। यह घटना बताती है कि जब व्यवस्था में पारदर्शिता सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी संभालने वाले अधिकारी ही भ्रष्टाचार के आरोपों में घिर जाएं तो जनता का भरोसा कमजोर होना स्वाभाविक है।

जीएसटी विभाग की जिम्मेदारी देश की कर व्यवस्था को व्यवस्थित और पारदर्शी बनाए रखने की है। छोटे व्यापारियों से लेकर बड़े उद्योगों तक लाखों लोग इस व्यवस्था से जुड़े हैं। ऐसे में जब विभाग के वरिष्ठ अधिकारी ही रिश्वत मांगने के आरोपों में फंसते हैं तो जनता और कारोबारी जगत के भरोसे को गहरी चोट पहुंचती है। रायगढ़ में एक पत्थर खनन कंपनी से जुड़े मामले ने यह सवाल भी उठाया है कि क्या व्यवस्था में मौजूद खामियों का फायदा उठाकर करदाताओं पर अनावश्यक दबाव बनाया जाता है और विवादों के समाधान के नाम पर अवैध वसूली की कोशिश होती है?

इस घटना को केवल एक अलग मामला मानकर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। कर और राजस्व विभागों में रिश्वतखोरी के मामले पहले भी सामने आते रहे हैं। रायगढ़ में शिकायतकर्ता ने साहस दिखाया, जांच एजेंसी सक्रिय हुई और आरोपी पकड़े गए। लेकिन सवाल यह है कि जहां लोग शिकायत करने से डरते हैं, वहां भ्रष्टाचार के कितने मामले दबे रह जाते होंगे? देश के हर कार्यालय और हर अधिकारी पर हर समय बाहरी जांच एजेंसियों की निगरानी संभव नहीं है।

सीबीआई जैसी प्रमुख जांच एजेंसियों के संसाधन भी सीमित हैं। जीएसटी नोटिस या किसी विवाद का सामना करने पर व्यापारी अक्सर लंबी कानूनी प्रक्रिया से परेशान हो जाता है। इसी डर और अनिश्चितता का फायदा उठाकर कुछ भ्रष्ट अधिकारी अनुचित मांग कर सकते हैं। कई बार कारोबारी भी जल्दी मामला खत्म करने के लिए रिश्वत देने को तैयार हो जाता है। यही प्रवृत्ति भ्रष्टाचार के नेटवर्क को मजबूत करती है और ईमानदार व्यवस्था के सामने बड़ी चुनौती खड़ी करती है।

भ्रष्टाचार के खिलाफ नागरिक जागरूकता सबसे बड़ा हथियार है। रिश्वत लेना और देना दोनों कानूनन अपराध हैं, लेकिन लोग अक्सर कार्रवाई या भविष्य में परेशानी के डर से शिकायत नहीं करते। यह मानसिकता बदलनी होगी। व्यापारियों और करदाताओं को अपने कानूनी अधिकारों की जानकारी होनी चाहिए। जीएसटी नोटिस का जवाब देने, अपील करने और किसी अधिकारी की गलत मांग की शिकायत करने के प्रावधान मौजूद हैं।

इसके साथ ही तकनीकी और प्रशासनिक सुधार भी जरूरी हैं। नोटिस, जवाब और फैसलों की प्रक्रिया को अधिकतम स्तर तक ऑनलाइन किया जाना चाहिए, ताकि अधिकारी और करदाता के बीच अनावश्यक व्यक्तिगत संपर्क कम हो। मामलों के निस्तारण की स्पष्ट समय-सीमा तय हो और विभागीय आंतरिक निगरानी को मजबूत बनाया जाए। वरिष्ठ अधिकारियों की जवाबदेही भी उतनी ही जरूरी है।

रायगढ़ की घटना पूरे तंत्र के लिए चेतावनी है। भ्रष्टाचार रोकने की जिम्मेदारी केवल सीबीआई या जांच एजेंसियों की नहीं हो सकती। नागरिक जागरूक हों, व्यापारी गलत मांगों का विरोध करें और सरकार व्यवस्था को अधिक पारदर्शी व जवाबदेह बनाए। तभी जीएसटी व्यवस्था वास्तव में डर नहीं, बल्कि भरोसे का माध्यम बन सकेगी।

आजकल

एक जमीन, दो दावेदार

पहाड़ी खुदाई का मामला केवल अतिक्रमण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राजस्व व्यवस्था की विश्वसनीयता की भी गंभीर परीक्षा है। एक ही जमीन को एक रिपोर्ट में शासकीय और दूसरी में निजी बताया जाना संकेत देता है कि भूमि वर्गीकरण की प्रक्रिया में गंभीर त्रुटि या हस्तक्षेप हुआ है। जब राजस्व अमला मौके पर पहुंचा तो वहां पोकलेन मशीन से खुदाई चलती मिली। पंचनामा तैयार किया गया और खसरा नंबर तीन की भूमि को छोटे झाड़ का जंगल, अर्थात शासकीय भूमि, दर्ज किया गया। यह मौके पर किया गया प्रत्यक्ष अवलोकन था, जिसे सामान्यत: अधिक विश्वसनीय माना जाता है। लेकिन बाद में तैयार रिपोर्ट में इसी भूमि को निजी बता दिया गया। सवाल है कि बिना नए सीमांकन और ठोस दस्तावेजों के जमीन की प्रकृति कैसे बदल गई? यदि भूमि पहले शासकीय थी तो उसे निजी बताने का आधार क्या था? यह मामला पर्यावरणीय कानूनों से भी जुड़ा है। पहाड़ी को काटकर समतलीकरण करना बिना अनुमति अवैध हो सकता है और यदि भूमि शासकीय है तो यह अतिक्रमण के साथ शासकीय संपत्ति को नुकसान पहुंचाने का मामला भी बनता है। पोकलेन मशीन का मौके पर मिलने और बाद में गायब हो जाने का घटनाक्रम भी जांच की मांग करता है। राजस्व अमले द्वारा पुलिस को सूचना दिए जाने के बावजूद समय पर कार्रवाई क्यों नहीं हुई, यह भी स्पष्ट होना चाहिए। एक ही खसरे को दो अलग-अलग श्रेणियों में दर्ज करने से भविष्य में भूमि की खरीद-फरोख्त और स्वामित्व संबंधी विवादों में धोखाधड़ी की आशंका बढ़ सकती है। संबंधित अधिकारी का बाद वाली रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने से इनकार करना और दोबारा सीमांकन की आवश्यकता बताना भी पूरे प्रकरण को और गंभीर बनाता है। इस विवाद का समाधान स्वतंत्र और तकनीकी सीमांकन से ही संभव है। जीपीएस और सेटेलाइट मैप के आधार पर भूमि की वास्तविक स्थिति तय कर दोनों रिपोर्टों की तुलना की जानी चाहिए। यदि शासकीय भूमि को निजी बताने का प्रयास हुआ है तो जिम्मेदारों पर कार्रवाई होनी चाहिए, वहीं निजी भूमि को गलत तरीके से शासकीय बताए जाने की स्थिति में वास्तविक मालिक को न्याय मिलना चाहिए। पहाड़ी खुदाई पर तत्काल रोक लगाकर पर्यावरणीय नुकसान का आकलन भी जरूरी है। एक जमीन के दो अलग-अलग दावे केवल भूमि विवाद नहीं, बल्कि उस व्यवस्था की परीक्षा हैं, जिस पर नागरिक अपने संपत्ति अधिकारों के लिए भरोसा करते हैं।

ब्लैकबोर्ड से कोड तक सरकारी स्कूलों में दस्तक दे रहा है भविष्य

एक दौर था, जब सरकारी स्कूल का नाम आते ही मन में एक ही तस्वीर उभरती थी - टूटी-फूटी इमारत, अधूरी किताबें और रोजगार से दूर सैद्धांतिक पढ़ाई। लेकिन अब वही सरकारी स्कूल एक नई करवट ले रहा है। अब वहां किताब के साथ कंप्यूटर का कीबोर्ड भी बजेगा और ब्लैकबोर्ड के साथ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की स्क्रीन भी चमकेगी। मध्य प्रदेश के 1848 सरकारी हाईस्कूल और हायर सेकेंडरी स्कूलों में नौवीं कक्षा से एआई असिस्टेंट का व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू होने जा रहा है और इसकी शुरुआत एक सितंबर से ऑनलाइन कक्षाओं के रूप में होगी। यह सोच का बदलाव है। इसे केवल एक शैक्षिक आदेश की तरह नहीं देखा जाना चाहिए।

यह उस पुरानी मानसिकता पर चोट है, जो कहती थी कि तकनीक और भविष्य की पढ़ाई सिर्फ निजी स्कूलों के बच्चों का हक है। अब प्रदेश का वह बच्चा, जो गांव के सरकारी स्कूल में पढ़ता है, वह भी सीखेगा कि एआई क्या है, मशीन कैसे सोचती है और वर्चुअल असिस्टेंट कैसे बनाया जाता है। अब शिक्षा को किताब से निकालकर जीवन और रोजगार से जोड़ा जा रहा है।

इस योजना के तहत जिन स्कूलों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी यानी आईसीटी लैब पहले से मौजूद हैं, वहीं यह पाठ्यक्रम लागू होगा। स्कूल शिक्षा विभाग के विमर्श पोर्टल और यूट्यूब चैनल पर इस विषय से जुड़े वीडियो अपलोड किए जाएंगे। सप्ताह में तीन दिन नए पाठ का प्रसारण होगा और शुक्रवार को अभ्यास एवं प्रयोगात्मक कार्य कराए जाएंगे। शनिवार को पुनरावृत्ति दिवस होगा, ताकि कठिन विषयों को दोबारा समझा जा सके। यदि किसी दिन तकनीकी कारणों से वीडियो नहीं चल पाया तो अगले कार्य दिवस में उसे दिखाना अनिवार्य होगा। इस व्यवस्था से यह तय होगा कि कोई भी छात्र किसी पाठ से वंचित न रहे।

प्राचार्य और शिक्षक की जिम्मेदारी केवल हाजिरी तक सीमित नहीं। इस बार जिम्मेदारी केवल विभाग की नहीं, बल्कि स्कूल के प्राचार्य और कंप्यूटर प्रशिक्षक की भी तय की गई है। उन्हें यह देखना होगा कि बच्चा केवल स्क्रीन देख ही नहीं रहा, बल्कि समझ भी रहा है। उसकी जिज्ञासा को शांत करना, उसकी शंकाओं का समाधान करना और उसे प्रयोग करने के लिए प्रेरित करना ही इस कार्यक्रम की असली सफलता होगी।

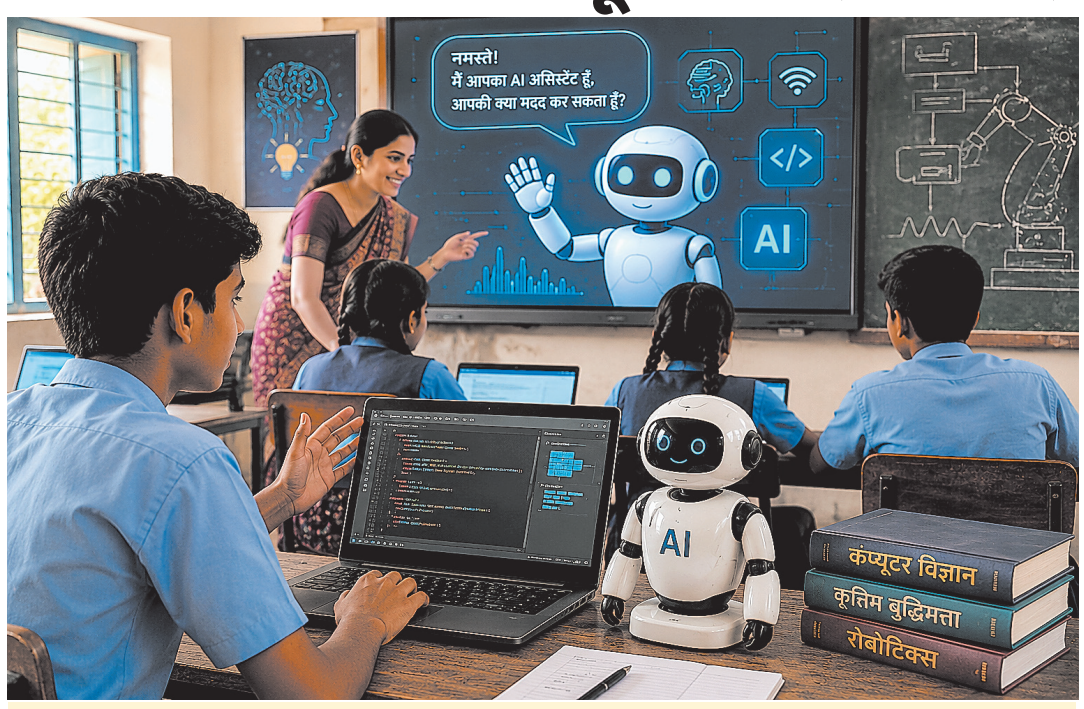

स्कूल शिक्षा विभाग के विमर्श पोर्टल और यूट्यूब चैनल पर इस विषय से जुड़े वीडियो अपलोड किए जाएंगे। सप्ताह में तीन दिन नए पाठ का प्रसारण होगा और शुक्रवार को अभ्यास एवं प्रयोगात्मक कार्य कराए जाएंगे। शनिवार को पुनरावृत्ति दिवस होगा, ताकि कठिन विषयों को दोबारा समझा जा सके। यदि किसी दिन तकनीकी कारणों से वीडियो नहीं चल पाया तो अगले कार्य दिवस में उसे दिखाना अनिवार्य होगा।

रोजगार कौशल, अंग्रेजी और विज्ञान के शिक्षक भी इसमें सहायक भूमिका निभाएंगे, ताकि एआई की पढ़ाई एकांगी न लगे, बल्कि अन्य विषयों से भी जुड़ती हुई लगे।

इस योजना के लिए शुरू में अधिक स्कूलों की पहचान की गई थी, लेकिन बाद में सूची का परिशोधन किया गया। 24 प्रयोगशालाओं को अन्य स्कूलों में स्थानांतरित किया गया। 48 विद्यालय, जो पहले से ही केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से संबद्ध थे, उन्हें इस सूची से हटा दिया गया। 42 ऐसे विद्यालय, जो मध्य प्रदेश ओपन स्कूल के माध्यम से पहले ही एआई का पाठ्यक्रम चला रहे थे, उन्हें भी इस नई सूची में शामिल नहीं किया गया। 15 विद्यालयों में लैब उपलब्ध नहीं होने या पहले से अन्य व्यावसायिक ट्रेड संचालित होने के कारण उन्हें बाहर रखा गया। यह परिशोधन दर्शाता है कि सरकार केवल संख्या नहीं, बल्कि गुणवत्ता पर भी ध्यान दे रही है।

गांव के प्रतिभाशाली बच्चों के लिए सबसे बड़ा अवसर इस आलेख का सबसे महत्वपूर्ण बिंदु यही है कि इसका लाभ किसे मिलेगा। इसका सबसे बड़ा लाभ उन बच्चों को मिलेगा, जिनके पास संसाधन कम हैं, लेकिन सपने बड़े हैं। ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों के बच्चे अक्सर तकनीक से दूर रह जाते हैं। उनके पास न तो महंगे कोचिंग संस्थान होते हैं, न ही निजी लैपटॉप। लेकिन जब उनके अपने स्कूल की स्मार्ट क्लास में एआई का वीडियो चलेगा तो उनकी दुनिया भी बदल जाएगी। वे घर बैठे विमर्श पोर्टल पर वीडियो दोबारा देख सकेंगे और खुद से अभ्यास कर सकेंगे। यह डिजिटल खाई को पाटने की दिशा में एक ठोस कदम है।

रोजगार की नई राह खुलेगी। यह पाठ्यक्रम केवल ज्ञान के लिए नहीं, बल्कि रोजगार के लिए भी है। आज पूरी दुनिया में एआई विशेषज्ञों की मांग तेजी से बढ़ रही है। बड़ी-बड़ी कंपनियां ऐसे युवाओं को खोज रही हैं, जो एआई टूल्स बनाना जानते हों, जो डेटा को समझते हों। नौवीं कक्षा से ही जब बच्चा इस दिशा में सोचना शुरू करेगा तो बारहवीं तक आते-आते वह इस क्षेत्र में इतना सक्षम हो जाएगा कि वह खुद का स्टार्टअप भी शुरू कर सकेगा। यह व्यावसायिक शिक्षा को सही अर्थों में सार्थक बनाएगा।

सरकारी शिक्षा की छवि बदलने का समय है। लंबे समय से यह धारणा बनी हुई है कि सरकारी स्कूल में पढ़ाई का स्तर कम होता है, लेकिन इस तरह के नवाचार से यह छवि टूटेगी। जब गांव का बच्चा अंग्रेजी में एआई असिस्टेंट से सवाल पूछेगा और रोबोटिक्स की बात करेगा तो समाज का नजरिया अपने आप बदलेगा। अभिभावकों का भरोसा सरकारी तंत्र पर लौटेगा और नामांकन दर में भी बढ़ोतरी होगी। यह केवल शिक्षा का नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का भी आंदोलन है।

इस सुंदर तस्वीर के साथ कुछ चुनौतियां भी जुड़ी हैं। कई स्कूलों में इंटरनेट की गति बहुत धीमी है, बिजली की आंख-मिचौली आम है और कंप्यूटर प्रशिक्षकों की भारी कमी है। कई जगह एक प्रशिक्षक को दो-तीन स्कूल संभालने पड़ते हैं। ऐसे में हर दिन वीडियो दिखाना और अभ्यास कराना आसान काम नहीं है। इसके लिए सरकार को बुनियादी ढांचे पर और अधिक निवेश करना होगा, प्रशिक्षकों की नियमित नियुक्ति करनी होगी और लैब को अपडेट रखना होगा। तभी यह योजना कागज से निकलकर जमीन पर सफल हो पाएगी। भविष्य की तैयारी आज से ही। कुल मिलाकर यह योजना केवल 1848 स्कूलों की योजना नहीं है, बल्कि यह पूरे प्रदेश के शैक्षिक भविष्य की दिशा तय करने वाली योजना है। एक सितंबर से शुरू होने वाली ये कक्षाएं केवल ऑनलाइन वीडियो नहीं हैं, बल्कि मध्य प्रदेश के लाखों बच्चों के लिए भविष्य के दरवाजे खोलने वाली चाबी हैं। यदि इसे ईमानदारी और संसाधनों के साथ लागू किया गया तो वह दिन दूर नहीं, जब सरकारी स्कूल का छात्र भी कहेगा कि हां, मैंने अपना एआई असिस्टेंट खुद बनाया है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

समय पर दफ्तर, समय पर समाधान

भोपाल से जिला तक जीरो टॉलरेंस का संदेश, जनता के काम में अब देरी नहीं चलेगी मध्य प्रदेश सरकार ने प्रशासन में अनुशासन और जवाबदेही तय करने के लिए एक बड़ा और स्वागत योग्य कदम उठाया है। राजधानी भोपाल के मंत्रालय परिसर के बाहर स्थित सरदार वल्लभभाई पटेल पार्क में मंत्रालय के साथ ही सतपुड़ा और विंध्याचल भवन में अब बायोमेट्रिक अटेंडेंस सिस्टम अनिवार्य रूप से लागू किया जा रहा है। सामान्य प्रशासन विभाग ने इस संबंध में तैयारी शुरू कर दी है और जिला स्तर के सभी कलेक्टर कार्यालयों के साथ ही अलग-अलग विभागों के उप कार्यालयों में भी इसी व्यवस्था को लागू करने की तैयारी की जा रही है। यह केवल एक मशीन लगाने का मामला नहीं है, यह कार्यसंस्कृति को बदलने का एक प्रयास है। प्रदेश के मंत्रालय में लगभग 3500 से अधिक शासकीय सेवक और 300 से अधिक अधिकारी-कर्मचारी कार्यरत हैं। कई बार यह शिकायत सामने आती थी कि शासकीय सेवक समय पर कार्यालय नहीं पहुंचते हैं, जनता के काम लटकते हैं, फाइलें समय पर नहीं निपटती हैं और पंचिंग की तैयारी की जा रही है, लेकिन अब सरकार सख्त होने जा रही है। तय समय पर आना-जाना अनिवार्य किया जा रहा है। अक्सर देखने में आता है कि कई कार्यालयों में नियत समय प्रात: 10 बजे पहुंचना होता है, लेकिन कई दफ्तर दिन के 11 बजे तक भी नहीं खुलते हैं। दोपहर 11 बजे के बाद अधिकारी-कर्मचारी कार्यालयों में पहुंचते हैं तो दो घंटे से पहले ही शासकीय सेवक दफ्तर छोड़ना शुरू कर देते हैं। कई सरकारी कार्यालयों में तो अपराह्न 4 बजे से ही ऑफिस खाली होने लगते हैं। इस तरह की शिकायतें लगातार सरकार को मिल रही थीं। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने इस मामले को गंभीरता से लिया है, लिहाजा अब सख्ती की तैयारी की जा रही है। यह व्यवस्था सतपुड़ा और विंध्याचल भवनों में लागू की जाएगी। इसके तहत अब मंत्रालय से लेकर मैदान तक के सभी अधिकारियों-कर्मचारियों पर नजर रखी जाएगी। राज्य सरकार अब सरकारी कार्यालयों में बायोमेट्रिक अटेंडेंस की व्यवस्था को पूरी तरह अनिवार्य करने की तैयारी में है। इसके लिए अब जिला स्तर पर भी बायोमेट्रिक अटेंडेंस की व्यवस्था लागू की जाएगी। सामान्य प्रशासन विभाग ने इस संबंध में तैयारी शुरू कर दी है। इसके तहत जिला स्तर के सभी कलेक्टर कार्यालयों के साथ ही अलग-अलग विभागों के उप कार्यालयों में भी बायोमेट्रिक मशीनें लगेंगी।

अक्सर देखने में आता है कि कई कार्यालयों में नियत समय प्रातः 10 बजे पहुंचना होता है, लेकिन कई दफ्तर दिन के 11 बजे तक भी नहीं खुलते हैं। दोपहर 11 बजे के बाद अधिकारी-कर्मचारी कार्यालयों में पहुंचते हैं तो दो घंटे से पहले ही शासकीय सेवक दफ्तर छोड़ना शुरू कर देते हैं। कई सरकारी कार्यालयों में तो अपराह्न 4 बजे से ही ऑफिस खाली होने लगते हैं।

यहां एक बड़ी शिकायत बनकर सामने आई है कि जब शासकीय सेवक कार्यालय पहुंचते हैं तो संबंधित अधिकारी-कर्मचारी सीटों पर मिलते नहीं। मुख्यमंत्री की सख्ती पर इन दोनों ही भवनों में विभागाध्यक्ष का कार्यालय भी है। इसमें मुख्य सचिव के अलावा मंत्रालय के आला अधिकारी भी शामिल होते हैं, लेकिन उस समय हास्यास्पद स्थिति बन जाती है, जब लगभग 3500 से अधिक शासकीय अधिकारी-कर्मचारियों की मौजूदगी वाले इन तीनों भवनों में 300 अधिकारी-कर्मचारी भी राष्ट्रगीत के गायन के दौरान नहीं पहुंचते।

जीरो टॉलरेंस ही सुशासन की पहली शर्त है। सरकारों का काम केवल योजना बनाना नहीं है, बल्कि उन योजनाओं को जमीन पर उतारना भी है और यह काम तभी संभव है, जब कर्मचारी समय का सम्मान करे। जनता के लिए सरकार का मतलब है पटवारी, सचिव, तहसीलदार, नगर निगम का क्लर्क, बिजली विभाग का इंजीनियर। अगर ये लोग समय पर नहीं मिलेंगे तो जनता का सरकार पर से विश्वास उठ जाएगा। बायोमेट्रिक सिस्टम इसी विश्वास को वापस लाने का माध्यम है। जब कर्मचारी को पता होगा कि उसकी उपस्थिति का रिकॉर्ड सीधे भोपाल तक देखा जा रहा है तो वह समय का पाबंद होगा। समय की पाबंदी से काम में तेजी आएगी। तेजी से जनता के काम निपटेंगे।

प्रदेश के सभी कर्मचारियों को यह समझना होगा कि यह सख्ती उनके खिलाफ नहीं, बल्कि उनके सम्मान के लिए है। जो कर्मचारी ईमानदारी से समय पर आते हैं, अपना काम पूरी निष्ठा से करते हैं, उनके लिए यह व्यवस्था एक सुरक्षा कवच है। अब उनके काम की तुलना उन लोगों से नहीं होगी, जो देर से आते हैं और जल्दी चले जाते हैं। इतिहास गवाह है, ऐसे प्रयास होते रहे हैं। यह पहली बार नहीं है, जब सरकार ने अनुशासन के लिए कदम उठाया हो। पहले भी समय-समय पर पंचिंग सिस्टम, सीसीटीवी, औचक निरीक्षण जैसे प्रयास होते रहे हैं। हर सरकार ने यह कोशिश की है कि शासन जनता के द्वार तक समय पर पहुंचे।

पूर्व में भी कई मुख्यमंत्रियों ने मंत्रालय में राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत के समय उपस्थिति अनिवार्य की थी। इसका उद्देश्य भी एक ही था - दिन की शुरुआत अनुशासन से हो। अब बायोमेट्रिक उसी परंपरा को तकनीक से जोड़ रहा है। सरकार का यह संदेश साफ है कि लेटलतीफी पर अब जीरो टॉलरेंस रहेगा। शासकीय सेवकों के आने-जाने के समय पर निगरानी के लिए यह व्यवस्था लागू की जा रही है। इससे जनता में यह सकारात्मक संदेश जाएगा कि सरकार उनकी समस्याओं को लेकर गंभीर है।

प्रदेश के लाखों कर्मचारी प्रदेश की रीढ़ हैं। उन्हीं के दम पर लाड़ली बहना, पीएम आवास, आयुष्मान भारत, किसान सम्मान निधि जैसी योजनाएं घर-घर पहुंच रही हैं। सरकार का यह कदम उन कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाने वाला है, जो चुपचाप अपना काम करते हैं।

सभी अधिकारियों-कर्मचारियों को चाहिए कि वे इस व्यवस्था को बोझ न समझें, बल्कि इसे एक अवसर समझें। समय पर कार्यालय आएं, जनता की समस्याओं को धैर्य से सुनें और उनका समाधान तय समय-सीमा में करें। फाइलों को अनावश्यक रूप से न रोकें। यदि कोई समस्या है तो अपने वरिष्ठ अधिकारी को तुरंत अवगत कराएं।

एक छोटी सी देरी किसी गरीब के लिए बहुत बड़ी परेशानी बन सकती है। आपका एक हस्ताक्षर किसी किसान को उसकी फसल का मुआवजा दिला सकता है, किसी छात्र को छात्रवृत्ति दिला सकता है।

इसलिए आइए, इस नई पहल का स्वागत करें। समय पर आएं, समय पर जाएं और मध्य प्रदेश को सुशासन का मॉडल प्रदेश बनाएं। सरकार ने अपना काम कर दिया है। अब बारी प्रदेश के कर्मचारियों की है कि वे जनता के भरोसे पर खरा उतरें और जीरो टॉलरेंस के मंत्र को अपने आचरण में उतारें।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

47 साल बाद न्याय या मजाक

भोपाल का एक मामला पूरे देश की न्याय व्यवस्था पर सवाल खड़ा कर रहा है। 1979 में शुरू हुआ 32,792 रुपये का वसूली विवाद 2026 में जाकर खत्म हुआ है। यानी पूरे 47 साल बाद दोनों पक्षों में मेडिएशन से समझौता हुआ और 90 हजार रुपये पर मामला निपटाया गया। सोचिए, 1979 में 32 हजार रुपये की कीमत क्या थी और आज 90 हजार रुपये की कीमत क्या है। क्या यह न्याय है या अन्याय की पराकाष्ठा है?

1979 से 2026 तक का सफर तारीखों का मकड़जाल रहा। यह मामला 1979 में भोपाल जिला अदालत में शुरू हुआ था। मध्य प्रदेश स्टेट एग्रो और पीडी महेश्वरी के बीच वसूली का विवाद था। मामला लंबा खिंचा और 2000 में अदालत ने स्टेट एग्रो के पक्ष में फैसला सुनाते हुए 12 प्रतिशत ब्याज सहित भुगतान का आदेश दिया, लेकिन इसके बाद भी विवाद खत्म नहीं हुआ। इसके बाद हाई कोर्ट, जबलपुर में चुनौती दी गई। करीब 20 साल तक हाई कोर्ट में मामला चला और 13 अक्टूबर 2025 को हाई कोर्ट ने मामले को वापस भोपाल की नवम अपर जिला अदालत में भेज दिया। तब तक 46 साल बीत चुके थे और अंत में 12 अगस्त 2026 को मेडिएशन के जरिए 90 हजार रुपये पर समझौता हुआ।

90 हजार में क्या मिला, 47 साल का हिसाब कौन देगा? 1979 में 32,792 रुपये की कीमत आज के हिसाब से लाखों में होती है। यदि सामान्य महंगाई दर से भी हिसाब लगाया जाए तो आज उसकी कीमत करीब 9 लाख रुपये से अधिक बैठती है। लेकिन 47 साल के संघर्ष के बाद केवल 90 हजार रुपये में मामला खत्म हुआ। इसमें वकीलों की फीस, अदालत के चक्कर, मानसिक तनाव और समय की बर्बादी का हिसाब जोड़ा ही नहीं गया है। क्या यह न्याय है? यह तो न्याय के नाम पर समझौता है, जो मजबूरी में किया गया है।

वकील भी नहीं रहे जिंदा, जो केस लड़ रहे थे। इस मामले की सबसे दर्दनाक बात यह है कि 1979 में जिन अधिवक्ताओं ने इस मामले की पैरवी शुरू की थी, उनमें से आरके श्रीवास्तव अब इस दुनिया में नहीं हैं। यानी जिसने केस शुरू किया था, वह अपने केस का अंत देखने के लिए जीवित ही नहीं रहा। यह हमारी व्यवस्था की सबसे बड़ी हार है। जब न्याय इतना देर से मिले कि मांगने वाला ही न रहे, तो ऐसे न्याय का क्या लाभ?

आम आदमी का भरोसा टूटता है ऐसे मामलों से। देर से मिला हुआ न्याय भी अन्याय ही है। यह मामला इस कहावत को पूरी तरह सही साबित करता है। यदि एक छोटे से वसूली के मामले में 47 साल लग सकते हैं तो बड़े आपराधिक और जमीन-जायदाद के मामलों में कितना समय लगता होगा, इसका अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है। आम आदमी अदालत का नाम सुनते ही डर जाता है, क्योंकि उसे पता है कि एक बार केस में फंसा तो पूरी जिंदगी तारीखों में निकल जाएगी।

तारीख पर तारीख की संस्कृति कब खत्म होगी? हमारी अदालतों में लंबित मामलों की संख्या करोड़ों में पहुंच गई है। न्यायाधीशों की कमी, स्टाफ की कमी और पुरानी प्रक्रिया के कारण हर मामले में तारीख पर तारीख मिलती है। इस मामले में भी यही हुआ। 1993 में एकतरफा सुनवाई शुरू हुई, फिर 2000 में फैसला आया, फिर 2004 में चुनौती और फिर 2005 में हाई कोर्ट में मामला पहुंचा। इसके बाद 20 साल तक हाई कोर्ट में मामला लटका रहा। यह सिलसिला कभी खत्म ही नहीं हो रहा था।

अंत में मेडिएशन से ही सही, मामला खत्म हुआ। 47 साल बाद इस मामले का अंत मेडिएशन और आपसी सहमति से हुआ है। यह दर्शाता है कि यदि पहले ही मेडिएशन और लोक अदालत का सहारा लिया जाता तो यह मामला 47 साल तक नहीं खिंचता। छोटे-मोटे मामलों को अदालत से बाहर ही सुलझाने की जरूरत है, ताकि अदालतों पर बोझ कम हो और लोगों को जल्दी न्याय मिल सके। सरकार को चाहिए कि वह मेडिएशन को और अधिक मजबूत बनाए और हर जिले में इसके लिए विशेष केंद्र खोले।

यह मामला सरकार और न्यायपालिका दोनों के लिए एक चेतावनी है कि यदि सुधार नहीं हुए तो लोगों का भरोसा अदालतों से उठ जाएगा। फास्ट ट्रैक कोर्ट की संख्या बढ़ानी होगी, जजों की नियुक्ति करनी होगी और तकनीक का उपयोग करना होगा। ऑनलाइन सुनवाई और डिजिटल फाइलिंग से समय बचाया जा सकता है। साथ ही पुराने मामलों को प्राथमिकता के आधार पर निपटाना होगा।

47 साल तक संघर्ष करने के बाद यदि 90 हजार रुपये मिले तो इसे क्या कहेंगे? क्या यह न्याय है या अन्याय? क्या यह जीत है या हार? यह मामला एक आईना है, जो हमें दिखाता है कि हमारी न्यायिक प्रणाली कितनी धीमी है और इसे कितने बड़े सुधार की जरूरत है। यदि आज भी नहीं जागे तो कल ऐसे ही सैकड़ों मामले 50 साल तक लटकते रहेंगे और न्याय केवल किताबों में ही रह जाएगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)